सरना समाज और उसका अस्तित्व

शोध एवं संकलन :

डॉ० नारायण उराँव 'सैन्दा'

प्रकाशन तिथि – अगस्त 1989 ई०

पुनर्मुद्रण – अगस्त 2022 ई०

अद्दी अखड़ा प्रकाशन, राँची (झारखण्ड)

[illegible]

सरना समाज और उसका अस्तित्व

शोध एवं संकलन :
डॉ० नारायण उराँव 'सैन्दा'
चक्रीय चिकित्सक
दरभंगा चिकित्सा महाविद्यालय, लहेरियासराय (बिहार)

सम्पादक :
डॉ० (श्रीमती) ज्योति टोप्पो उराँव

सर्वाधिकार © : सम्पादक

प्रथम संस्करण – अगस्त 1989, दरभंगा, लहेरियासराय (बिहार)
पुनर्मुद्रण – अगस्त 2022, राँची (झारखण्ड)

सम्पर्क पता :
तोलोंग चम्मबी, चिरौन्दी नगड़ा डिप्पा, बोड़ेया रोड, राँची (झारखण्ड),
पिन : 834006, मो० न० : 9771163804

विषय सूची

क्रम संख्या	–	विषय	–	पृष्ठ
1. प्रस्तावना			–	01
2. सरना समाज : एक परिचय			–	05
3. सरना माँ क्या है तथा माँ ही क्यों कहते हैं ?			–	10
4. सरना एक पूज्य स्थल			–	12
5. सरना वृक्ष, सखुवा ही क्यों ?			–	13
6. प्रकृति की ही पूजा क्यों ?			–	17
7. सरना समाज की संस्कृति और सामाजिक व्यवस्था			–	23
8. क्या, सरना और हमारा अस्तित्व खतरे में है ?			–	25
9. साल, सरना और हमारा अस्तित्व में अन्योन्याश्रय संबंध !			–	25
10. हमारा अस्तित्व किस प्रकार मिट रहा है ?			–	27
11. धर्म एवं जातीय अस्तित्व को खतरा			–	29
12. हमारी विभूतियाँ एवं उपसंहार			–	36

*****

1. प्रस्तावना

प्रस्तुत पुनर्मुद्रण संस्करण की यह छोटी पुस्तिका, पाठकों के समक्ष वर्ष 1989 के मूल स्वरूप में ही है। संकलन कर्ता द्वारा लगभग 28 वर्ष की उम्र के खट्टे–मीठे अनुभवों को इस पुस्तक के प्रथम संस्करण में उकेरा गया है। उन्होंने अपने छात्र जीवन में घटित घटनाओं तथा मन में उठ रहे विचारों को लेख के माध्यम से अंकित किया है। वैसे, कहा जाता है कि आदिवासी मान्यता और विश्वास की परिभाषा स्पष्ट नहीं है, परन्तु यह भी सत्य है कि प्राचीनतम मान्यता अथवा आदिवासी आस्था–विस्वास वाले लोगों की संख्या पूरे विश्व में बहुत कम प्रतिशत है। वैसे में लोगों का झुकाव नव विकसित आस्था–विस्वास की ओर हुआ। कहने के लिए आदिवासी समाज प्रकृति प्रेमी हैं, पर इन्हें अपने प्रकृति प्रेम, आस्था–विश्वास, परम्परा एवं धरोहर को संजोकर रख पाने में अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ा है।

मानव की मूलभूत आवश्यकताओं में से रोटी, कपड़ा और मकान (मण्डी, किचरी अरा छपरी) मुख्य तीन है, परन्तु विकसित मानवीय गुणों के लिए इसके अतिरिक्त, तीन और विशिष्ट चीजों की अवाश्यकता होती है। वे चीजें हैं स्वास्थ्य, शिक्षा और अध्यात्म। पारम्परिक उराँव समाज में उपरोक्त 06 आवश्यकताओं (रोटी, कपड़ा, मकान एवं स्वास्थ्य, शिक्षा, अध्यात्म) का विकास समय अनुकूल हो चुका था, पर आधुनिक समय की तुलना में तथा आधुनिकता के चकाचौंध में पीछे रह गया। परन्तु देश की आजादी के बाद, यह समाज अपनी धरोहर को बचाने का प्रयास करते हुए मुख्यधारा से जुड़कर, विकसित करने की जुगत लगा रहा है। इस जुगत में परम्परागत उराँव समाज को अपने पुस्तैनी विरासत को यथा 1. अखड़ा, 2. धुमकुड़िया, 3. ग्राम सभा, 4. चाःला, 5. देबीगुड़ी, 6. पड़हा, 7. बिसुसेन्दरा को बचाना होगा। गाँव–समाज की इन शक्तियों को फिर से जागृत करना होगा।

पर आधुनिक विकास की दौड़ में आदिवासी समाज को अपनी विरासत में मिली चीजों को संभालने में अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। इसके लिए आदिवासी समाज को मातृभाषा की शिक्षा पर जोर देना होगा और केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकार की त्रिभाषा नीति को अपनाना होगा। इसके लिए समाज के लोग अपनी सामाजिक धरोहर के अनुरूप पाठ्यक्रम तैयार कर के०जी० से पी०जी० तक की शिक्षा में ध्यान दें। इससे समाज के सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक विकास में जागरूकता बढ़ेगी।

इस पुनर्मुद्रण संस्करण 2022 में वर्ष 1989 में छपी बातें पूर्व की तरह है। वर्तमान उराँव समाज में समय की मांग की दृष्टि से युवक–युवतियों तक पारम्परिक अवधारणा तथा लेख–विचार पहूंचाने का प्रयास किया गया है। अंत में मैं सभी भाषा–संस्कृति प्रेमियों का अभिनंदन करते हुए आभार व्यक्त करती हूँ।

– डॉ० (श्रीमती) ज्योति टोप्पो उराँव
चिरौंदी, बोड़ेया रोड, राँची (झारखण्ड)

दिनांक : 09 अगस्त 2022

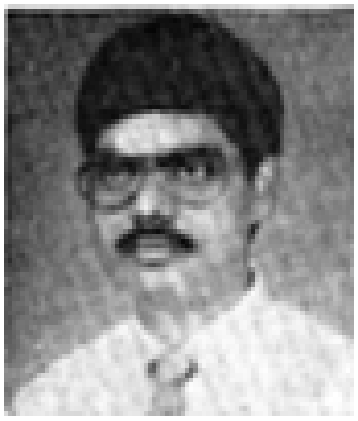

'सर्वशक्तिमान माँ ही सरना माँ है।"

– डॉ. नारायण उराँव 'सैन्दा'

दो-शब्द

आज के विकासशील युग में, जबकि सारे देश, सारे समाज दिनों-दिन प्रगति की ओर अग्रसर हैं, हमारे आदिवासी समाज की स्थिति दिनों-दिन बदत्तर होती जा रही है। यह एक चिंतनीय विषय है। वर्त्तमान प्रशासन, हमारी सुरक्षा एवं विकास के लिए काफी ध्यान दे रहा है, किन्तु आर्थिक एवं सांस्कृतिक रूप से हमें शोषण का शिकार होना ही पड़ रहा है। ऐसा आभास होता है कि उन्नत और संभले कहे जाने वाले समाज के दिल में हमारे प्रति हमदर्दी दिखावे मात्र के लिए है। दरअसल, हम अभी भी असहाय और असुरक्षित हैं ।

हम इतने अचेत सोये थे कि हमें अपनी दुर्दशा का भी ज्ञान नहीं था। स्व० कार्तिक उरांव पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने इस तथ्य को गंभीरता से लिया। आप एक प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति थे। विज्ञान, विधि, दर्शन, भाषा आदि विषयों पर आपका गहन अध्ययन-चिन्तन था। आप उच्च कोटि के देश प्रेमी, समाज-सेवी, निष्पक्ष तथा स्वतंत्र विचारक एव विद्वान व्यक्ति थे। आपका विचार, आपके लेख और भाषणों ने हमें एक नई जागृति का संदेश दिया है। जब कभी भी समाज सुधारक विषयक चर्चा होती है, हम आपके आगे नतमस्तक हैं और आपको श्रद्धा से याद करते हैं। आपने कहा है—"अगर आदिवासियों को जीवित रखना है तो उनकी सस्कृति, सभ्यता, परम्परा एवं आदि धर्म को जीवित रखना होगा।' (देखें–बीस वर्ष की काली रात ले०-कार्तिक उरांव) इस कथन में एक अलौकिक क्रन्दन है, हृदय विदारक चीख है। वह हमारी कमजोर नजरों से दिखाई नहीं

देती तथा बहरे कानों से सुनाई नहीं पड़ती। यह करूण क्रन्दन एवं चीख दिनों-दिन गहराती जा रही है, किन्तु अबतक हम बेसुध पड़े हुए हैं।

अब हम पढ़े लिखे एवं चिन्तनशील व्यक्तियों का फर्ज है कि हम अपने को पहचानें। अशिक्षा एवं शराब रूपी कोढ़ को समाज में निर्मूल करने के लिए प्रयत्नशील हों। अपने अधिकार एवं कर्त्तव्य को जानें। अपने ऊपर हो रहे शोषण के खिलाफ आवाज बुलंद करें। इन्हीं भावनाओं से प्रेरित होकर मैं आपके समक्ष एक छोटा सा विचार संदेश रख रहा हूँ।

इस लेख में, मैंने आदिधर्मावलंबी सरना समाज एवं लोगों के अन्दर की उन तमाम भावनाओं को जगाने की कोशिश की है, जो वर्षों से शोषित एवं कुंठित है। कहीं ऐसा न हो कि उन तमाम भावनाओं को कुचल दिया जाय और हम कुंठित होकर पहचान रहित, दिशाहीन भटकतें फिरें। मेरा उद्देश्य साम्प्रदायिकता नहीं है, किन्तु शोषण के विरूद्ध सामाजिक जागृति एवं क्रांति लाना है, सोयी हुई मानसिकता को जगाना है। वैसे, लेख में जाति एवं धर्म का उल्लेख है, किन्तु शोषण भी कुछ इसी ढ़ंग से हुआ है जिसे दर्शाने का, मेरा यह मामूली सा प्रयास है। कहीं का प्रसंग अतिशयोक्ति-सा लग सकता है, किन्तु कभी-कभी कड़वा सत्य भी ग्राह्य और हितकर होता है। आशा है, आप मुझे स्वीकार करेंगे और इस निबंध में कोई नई विचार धारा एवं सुझाव देकर मुझे अनुगृहीत करेंगे।

"सरना माँ" से विनती है कि हम सरना पुत्रों को सद्-बुद्धि एवं पारख ज्ञान तथा बल दे। हमारा मनोबल ऊँचा हो। हम, समस्त समाज एवं देश के साथ कदम से कदम मिलाकर चलें। हमें अपनी जाति, भाषा, धर्म संस्कृति आदि का गौरव प्राप्त हो।

दिनांक – 19 अगस्त 1989 ई० डॉ० नारायण उराँव "सैन्दा"

सरना-एक परिचय

साधारणतया "सरना" शब्द चार-पाँच चीजों की ओर ध्यानाकर्षित करता है।

पहला-"सरना माँ" (सर्वशक्तिमान माँ)

दूसरा-"सरना स्थल" (वह पूज्य स्थल जहाँ सरना धर्मावलम्बी पूजा अर्चना करते हैं)

तीसरा-"सरना धर्म" (जिसे धरती पुत्र सदियों से प्रकृति की गोद में रहकर, प्रकृति की ही पूजा करने में विश्वास रखते हैं)

चौथा -"सरना समाज" ।

पाँचवा-"सरना वृक्ष" आदि।

इन तमाम चीजों का समावेश इसी सरना शब्द में निहित है, यदि इसे अन्यथा नहीं समझा जाय या फिर इस शब्द की सार्थकता पर चिन्तन किया जाय। इस शब्द की शार्थकता को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है।

सरना=स + र + न + आ

स - सर्वशक्तिमान

र—रंगहीन अथवा रक्तहीन (अदृश्य एवं जो जन्म न लिया हो)

न—निराकार ब्रह्म (धर्मेस)

आ-आस्तिक (भगवान पर विश्वास करने वाला)

अर्थात् सर्वशक्तिमान निराकार ब्रह्म (धर्मेस) की उपासना करने वाला ही "सरना" अथवा "सरना धर्मावलम्बी" है। ये सरना धर्मावलम्बी "एक ईश्वरवाद" को मानते हैं तथा इसके

मानस पटल पर ईश्वर का कोई खास रूप नहीं है। इसीलिए तो ईश्वर (धर्मेस) को सर्वशक्तिमान एवं सर्वव्यापी मानकर प्रकृति की पूजा करके, ईश्वर (धर्मेस)का दर्शन करते हैं। इनके बीच गीत गाया जाता है—

"धरम-धरम बा-दर भाई बहीन बगारो
धरम नम्हँय एकेसन, करम नम्हँय एकेसन रओ ॥ २ ॥"

"पूरबे हूँ मल्ला, पछिमें मल्ला
जियानूम सोच ओर जियानूम, कायानूम धोख ओर कायानूम रओ ॥ २ ॥"

"उतरे हूँ मल्ला, दखिने हूँ मल्ला
जियानूम सोच ओर जियानूम कायानूम धोख ओर कायानूम रओ ॥ २ ॥

अर्थात, हे भाई-बहन ! तुम धर्म-धर्म कहते हो, तुम्हारा धर्म कहाँ है ? तुम्हारा कर्म कहाँ है ? तुम्हारा धर्म-कर्म, पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण कहीं नहीं है। तुम अपने आत्मा में ढूँढ़ो, तुम अपने ही हृदय में ढूँढ़ो। वहीं तुम्हें तुम्हारा धर्म मिलेगा, वहीं तुम्हें तुम्हारा कर्म मिलेगा, वहीं तुम्हें, तुम्हारा धर्मेस (ईश्वर) मिलेगा।

वास्तव में यह सरना जितना पुराना है, उतना ही सार (गूढ़) भी है; किन्तु इसके सारत्व को, इसके मूल को, इसकी गरिमा को अबतक हम सबों ने समझने की कोशिश ही नहीं की। सभ्यता के विकास के साथ-साथ भले ही हमने भी इस भौतिकता को अपनाया है, किन्तु अपने इस सरना के सारत्व को उपेक्षित ही किया है। इस भौतिकवादी सरना समाज में दो वर्ग के लोग हैं। एक—पढ़ वर्ग, दूसरा—अपढ़ वर्ग। अनपढ़ वर्ग तो अज्ञानता वश चिन्तन करने में असमर्थ है, फिर भी इसी वर्ग ने अबतक इसकी गरिमा को बरकरार रखा है, किन्तु पढ़ा लिखा

वर्ग ने तो इसकी गरिमा को ठेस ही पहुँचाया है । सारत्व के विषय में चिन्तन की बात तो दूर, इन्होंने तो इसे पुरानी परम्परा एवं अंधविश्वास कहकर नीचा तो दिखाया ही, साथ ही दूसरों के बहकावे एवं दिखावे में आकर "सरना" को अलविदा कह दिया, साथ ही दूसरे मजहब में मिलकर स्वयं को गौरवान्वित महसूस करते हुए सरना की तौहिनी भी की ।

कहा जाता है जब गुरू और गोविंद (धर्मेस) दोनों एक ही जगह पर खड़े हों तो सबसे पहले गुरू को प्रणाम करना चाहिए, उसके बाद ही गोविन्द (धर्मेस) को चूँकि गुरू ने ही गोविन्द धर्मेस) के रास्ते को बतलाया है । यदि गुरू गोविन्द से पहले पूजनीय है, तो सरना धर्मावलम्बियों की गलती कहाँ है ? सरना धर्मावलम्बी सिर्फ वे ही लोग हैं, जिन्होंने वंशानुगत इसे पाया । जिनके पूर्वज सदियों पुरानी इस रीति को प्रकृति की गोद में रहकर प्रकृति से सीखा और अपनाया, जिन्हें वर्त्तमान समाज में आदिवासी कहा जाता है । काल परिवर्तन के साथ इस आदिवासियत में भी फर बदल हुआ है । कुछ लोगों ने ईसाई धर्म स्वीकार किया, कुछ लोगों ने मुस्लिम एवं सिख, कुछ लोग अपने को हिन्दू कहने लगे । इस प्रकार, धर्म परिवर्तन एवं हिन्दू कहलाने में उनकी बैचारिक शोषण की झलक मिलती है, जो अज्ञानवश मानसिक शोषण से बचने के लिए अलग-अलग धर्म मानने एवं कहने लगे । यहाँ पर सिर्फ उन्ही आदिवासियों की बातें कहीं गयी हैं जो अपने पुरखों के दिये वरदान एवं आशीर्वाद को काल परिवर्तन के साथ, कंधा देते चले आ रहे हैं ।

आदिवासी शब्द अपने आप में जितना अर्थपूर्ण है उतना ही सत्य भी । आदि-शुरू, वासी-निवासी अर्थात्, मूल-निवासी । "आदिवासी" को अँग्रेजी में "ABORIGINE" कहा जाता है जिसका अर्थ होता है "SON OF THE SOIL" अर्थात

"धरती के बेटे"। आदिवासी कहने से ही एक मूल तत्व अथवा मिलावट रहित व्यक्ति अथवा समाज का बोध होता है और ऐसे ही व्यक्ति अथवा समाज के लोग "सरना धर्मावलम्बी" हैं। जिसमें किसी तरह की कोई घुसपैठ नहीं है, जो सरना की पवित्रता को सूचित करता है।

हमारे, पूर्वज धर्मशास्त्री, मानवशास्त्री, समाजशास्त्री कितने विद्वान रहे होंगे ? कितना चिन्तन करते रहे होंगे ? कितनी दूरदर्शिता रही होगी ? इन तमाम प्रश्नों का उत्तर अभी भी वर्त्तमान आदिवासी समाज की धार्मिक, सांस्कृति एवं सामाजिक व्यवस्था को देखने पर मिलता है। जो हजारों वर्ष बाद भी, तमाम राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं धार्मिक क्रांतियों के बावजूद अपनी पहचान बनाये हुए हैं। युगों पहले विकसित सरना समाज, धर्म एवं सामाजिक व्यवस्था जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आ रही है, वर्त्तमान तथाकथित विकसित समाज अभी इस ओर बढ़ रही है, अर्थात हमारे पूर्वजों का विचार कार्य-कुशलता एवं कार्यक्षमता कितनी तीव्र रही होगी इन्ही तथ्यों से स्पष्ट होता है। जो हमारे आदिधर्म की पवित्रता एवं सारत्व को दर्शाता है। किसी नवविकसित समाज अथवा धर्म के प्रारम्भ में, काफी कट्टरता रहती है। उनके सिद्धातों का पालन करना कर्त्तव्य ही नहीं धर्म समझा जाता है। यह सिद्धांत किसी व्यक्ति विशेष के चेतन अथवा अर्द्ध चेतन मन की उपज होती है, जिन्हें अवतारीपुरुष अथवा भगवान कहकर दूसरों को उनके सिद्धांतों को मानने के लिए बाध्य होना पड़ता है। अंत्तोगत्वा वही सिद्धांत कुछ दिनों बाद फीका पड़ जाता है या फिर लोग इससे दूर भागते हैं। किन्तु हमारे इस सरना धर्म अथवा समाज में, लिखित सिद्धांत न होने के बावजूद यह स्थिर है। इसकी विशेषता का कारण यह है कि इस धर्म के

मौलिक सिद्धांत मानव धर्म में निहित हैं और किसी व्यक्ति विशेष के मस्तिष्क की उपज नहीं है। यह तो सिर्फ प्रकृति रूपी गुरू से मिला हुआ आशीर्वाद है। प्रकृति से जो सीखा, मिला और जाना गया वही सिद्धांत है। अतः इन सिद्धांतों में पुरानापन झलकता ही नहीं और काल परिवर्तन के बावजूद अपनी पहचान बनाये हुए हैं। हमारे विद्वान पूर्वजों की यह बहुत बड़ी उपलब्धि है। साथ ही हमारे पूर्वजों एवं हम सबों की बहुत बड़ी विजय है, जो तमाम आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक क्रांतियों के बाद भी हम इसे अपनाये हुए हैं तथा जो सरना के सारत्व एवं स्वाभिमान को दर्शाता है।

धार्मिक अनुष्ठानों एवं मान्यताओं पर अध्ययन करने पर पता चलता है कि हमारे इष्ट देव "महादेव-पार्वती" है। भारतीय इतिहास में भी इसकी पुष्टि की गयी है कि पूर्व वैदिक काल में आर्य लोग पशुपति (महादेव) की पूजा नहीं करते थे। अर्थात "महादेव-पार्वती" पूर्णतः अनार्यों के देवता रहे हैं। किन्तु आर्यों को अनार्यों पर विजय, अनार्यों की मानसिक हीनता का कारण बना और आर्यों ने अनार्यों पर शासन एवं शोषण हेतु महादेव-पार्वती को अपना देवता मानकर अनार्यों पर अपने सिद्धांतों का बोझ लादा। यह कहना अनुचित नहीं होगा कि-"आदिवासो आर्य नहीं है"। जब आर्य ही नहीं है तो फिर "हिन्दू" कैसे हो सकते हैं ? आदिवासियों की अलग परम्परा है, संस्कृति है, भाषा है, धर्म है। उन्हें जबरन हिन्दू कहना, धर्म निरपेक्षता के खिलाफ है, असंवैधानिक है। आदिवासो अपने आदि माता-पिता महादेव एवं पार्वती को मानते हैं। महादेव-पार्वती क्रमशः पुरुष एवं नारी शक्ति का प्रतीक है और ईश्वरकृत है। धर्मेस द्वारा नर और नारी के रूप में इन्हें ही सृजन करना कहा जाता है। साथ ही सृष्टि को आगे बढ़ाने के लिए इन्हीं महादेव-

पार्वती को अधिकार दिया धर्मेस ने। इन्हीं आदि माता–पिता, महादेव–पार्वती की संतान सभी अनार्य जातियाँ हैं, ऐसा सबों का मानना है। हम सरना पूजा में इन्हीं आदि माता-पिता (महादेव-पार्वती), जिन्होंने, हमें जन्म दिया तथा वह सर्वशक्ति मान धर्मेस, की पूजा अराधना करते हैं। और आज का संसार भी इन्ही तीन शक्ति के बीच विचरण कर रहा है और यही सत्य है। इनमें से किसी को भी अलग नहीं किया जा सकता, मानव सृष्टि को आगे बढ़ाने के लिए हम "डंडा कट्टना" नेग (अनुष्ठान) करते समय इन्ही तीनों शक्ति को याद करते हैं। "डंडा कट्टना" नेग में प्रलय की कहानी तथा महादेव–पार्वती द्वारा भाई-बहन (पुरुष शक्ति एवं स्त्री शक्ति) को बचाकर रखने की कहानी कही जाती है। इस प्रकार हमारी परम्परा एवं विश्वास क्रमबद्ध है, अटूट है, किन्तु अज्ञानता एवं मानसिक हीनता ने हमें डिगा दिया है। इतिहास भी इस बात का गवाह है कि आर्यों ने यहाँ की मूल जातियों को, आदिवासियों को, अनार्य (निष्कृट) कहकर क्या-क्या नहीं किया! अब तक आदिवासी जिंदा है और अपनी पहचान बनाये हुए है, यही उनकी विजय है। जरूरत है अपने मान्यताओं, आदर्शों एव आदि माता-पिता (महादेव-पार्वती) द्वारा दिये गये आशीर्वादों को वहन करने की, चिन्तन करने की।

सरना माँ क्या है? तथा माँ ही क्यों कहते है?

सरना धर्मावलम्बियों के अनुसार "सर्वशक्तिमान माँ ही सरना माँ है। विभिन्न विचारको ने इसका नाम भिन्न-भिन्न दिया है। कुछ लोगों ने इसे देवी माँ कहा, कुछ लोगों ने भूत को संज्ञा दी और हेय दृष्टि से देखा। किन्तु इन नाना विकल्पों

का कारण अज्ञानता ही है। अज्ञानी मनुष्य हो विचार किये बिना ही, किसी पूर्वाग्रह के आधार पर तुरन्त निर्णय ले लेता है और निजी धारणा को सर्वश्रेष्ठ समझता है। इस तरह की सज्ञा देने वाले विशेषकर वे होते हैं, जो दूसरों की भावनाओं एवं विश्वासों को कम महत्त्व देते हैं तथा तिरस्कार करके नीचा दिखाकर उनकी भावनाओं एवं विश्वासों को ठेस पहुंचाते हैं तथा अपनी बातें मनवाने के लिए बाध्य करते हैं। बहुत से विचारकों ने ईश्वर को सर्वशक्तिमान बताकर लोगों के दिलों में भय पैदा किया ताकि ईश्वर के भय से, उस विचारक की कमजोरियाँ दिख नहीं पायें। बहुत से विचारकों ने ईश्वर को पिता कहा येसु ख्रीस्त ने ईश्वर को "हे हमारे पिता" कहा यानि पिता जो जन्मदाता भी है, संरक्षक भी और पालनकर्त्ता भी है। किन्तु हमारे विद्वान पूर्वजों ने ईश्वर को "सर्वशक्तिमान माँ' अथवा "सरना माँ" कहा। चूँकि ईश्वर न तो नर है और न मादा। यह तो मनुष्य के अर्द्धचेतन मन में बैठा हुआ विश्वास है कि माँ कहें अथवा पिता। हमारे विद्वान पुरखों ने प्रकृति और रोजमर्रा की जिन्दगी को, अध्यात्म के साथ जोड़ा। काफी खोजबीन के बाद "सर्वशक्तिमान पिता" के बदले "सर्वशक्तिमान माँ" कहना ही उचित समझा गया होगा। चूँकि माँ, जन्म के पूर्व बच्चे को नौ महीने तक अपनी कोख में रखती है। प्रसव पीड़ा सहने के बाद अपना दूध पिलाती है। माँ की गोद में बच्चा पेशाब करता है, टट्टी फिरता है, लेकिन माँ कभी भी बुरा नहीं मानती है। बड़ा होने पर बच्चा कुछ भी गलती करे, किन्तु माँ उसे माफ कर देती है। साथ ही माँ से बढ़कर संरक्षक एवं पालनकर्त्ता, भला दूसरा कौन हो सकता है ? वैसे पितृ प्रधान समाज में पिता का स्थान

ऊँचा है और सभी चीजों को इसी नजर से देखा जाता है। अतः यह कहकर पिता जन्मदाता है और सारा महत्व सिर्फ पिता को दिया जाय, तो माँ के हक में अन्याय ही होगा, चूँकि सृष्टि के लिये माँ और पिता दोनों ही आवश्यक हैं। मनुष्य क्या, सारे प्राणी, इसी धरती माँ की कोख से जन्म लेते हैं, इसकी गोद में फलते-फूलते है तथा एक दिन इसी धरती माँ की गोद में समा जाते हैं। सारी सृष्टि की यही परम्परा है। और यही धरती माँ अथवा प्रकृति सर्वशक्तिमान का प्रतीक है। अतः ईश्वर (धर्मेस) को यदि सर्वशक्तिमान पिता कहा जा सकता है तो सर्वशक्तिमान माँ कहने में भी कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। और हाँ, यदि माँ समझकर अराधना की जाय तो डर कैसा; स्वार्थ कैसा ? और भय रहित, स्वार्थ रहित होकर ईश्वर की प्रार्थना की जाय तो ईश्वर के दर्शन भी जल्द ही होंगे। शायद ईश्वर को सर्वशक्तिमान माँ अथवा सरना माँ कहने का यही अभिप्राय रहा होगा।

सरना-एक पूज्य स्थल

यह पूज्य स्थल प्रत्येक आदिवासी गाँव में एक स्वच्छ स्थल पर होता है। हमारे पुरखों ने बहुत ही सोच समझकर एक सखुवा (सारजोम) वृक्ष की छाया को चुना तथा उस सखुवा (सारजोम) पेड़ को सरना पेड़ नाम दिया और उसे स्थल को सरना स्थल। किसी परिस्थिति विशेष अथवा नया गाँव बसाने पर, गाँव के सभी लोगों द्वारा किसी विशेष सखुवा (सारजोम) पेड़ एवं स्थान को सरना वृक्ष एवं सरना स्थल बनाया जाता रहा है ऐसा कहा एवं सुना जाता है। किन्तु वर्तमान समय, नये गाँव में, नया सरना बनाने की प्रथा समाप्त हो चुकी है। अतः नये गाँव के लोग, जिस पुराने गाँव की जमीन में बसे होते हैं वहीं के सरना में जाकर पूजा अर्चना करते हैं।

नया सरना बनाने अथवा नहीं बनाने के बाद-विवाद में एक सरना भक्त, जिन्होंने अपनी सारी जिन्दगी पहनई में बिताया है, का कहना है कि –"हम नया सरना बना ही नहीं सकते। भले ही मन्दिर, मस्जिद एवं गिरजाघर को तोड़कर बदला एवं बनाया जा सकता है किन्तु सरना स्थल तोड़ा एवं बदला नहीं जा सकता है। और इसे नहीं बदलने में हमारी भलाई है।" यदि हमारा सरना छीन लिया जाय, सरना स्थल उजाड़ दिया जाय, उसके बाद हम अपनी कमजोरियों को छिपाने के लिये नया सरना स्थल स्थापित करने की सोचें तो अहित ही होगा। यह तथ्य कड़ुवा किन्तु सत्य है। चूँकि वर्त्तमान समय में प्रलोभन एवं विस्थापन एक गम्भीर समस्या बनती जा रही है, अतः इन तथ्यों की गम्भीरता पर चिन्तन करना ही इसका आशय है।

वर्त्तमान समय में सखुवा (सारजोम) के न रहने पर लोग दूसरी पेड़ों की छाया तले पूजा–अर्चना करते हैं। लेकिन यह दूसरा पेड़ पूर्व व्यवस्थित "सरना" जहाँ सखुवा ही रहा होगा, के स्थान पर रहता है। और यदि किसी के द्वारा झूठी दिलासा अथवा जबरदस्ती, सरना को उजाड़ा जाना या हटाया जाना हमारी भावनाओं एवं विश्वासों के साथ खिलवाड़ करना होगा। और यह मजाक हमारी भावनाओं, विश्वासों, मान्यताओं एवं हमारे स्वाभिमान पर वज्राघात होगा। जो हमें चिन्तन के लिए बाध्य करता है।

सरना वृक्ष-सखुवा ही क्यों ?

यों तो बहुत सारी लोक कथाएँ कही एवं सुनी जाती हैं इस संबंध में, किन्तु इन कथाओं से हटकर भी यदि अतीत की ओर झाँका जाय तो कुछ तथ्य सामने आते हैं। हमारे विद्वान पुरखों की दूरदर्शिता और विद्वता का परिचय इन्हीं तथ्यों पर

चिन्तन करने पर मिलता है । हमारे पूर्वज समाजशास्त्री, मानवशास्त्री एवं धर्मशास्त्री सभी ने मिलकर, समाज के लोगों को भलि-भाँति पहचाना और जाना, मनुष्य का प्रकृति के साथ सम्बन्ध को अध्ययन किया, प्रकृति के साथ उन तमाम चीजों का तुलनात्मक अध्ययन किया, प्रकृति और समाज को अध्यात्म के साथ जोड़ा और शायद इन्हीं सारत्व को, सारजोम (सखुवा) वृक्ष को प्रतीक मानकर "सरना" नाम दिया गया होगा । वैसे कुड़ुख (उराँव) आदिवासियों के मन में एक प्रश्न बार-बार उठता है कि "सरना", कुड़ुख शब्द नहीं है, क्योंकि कुड़ुख भाषा में "सरना" को "चाला" कहा जाता है परन्तु ध्यान देने योग्य बात यह है कि कुड़ुख भाषा में सिर्फ 'चाला' या 'चाला अयंग' या 'चाला टोंका' कहा जाता है न कि 'चाला धर्म' । यानि जब-जब धर्म की बात उठती है तब-तब "सरना धर्म" का ही नाम आता है । इन विविधताओं का कारण यह हो सकता है; चूँकि सरना धर्म मानने वाले विशेषकर झारखण्ड क्षेत्र में ही हैं और वे लोग जो फिलहाल रोजी-रोटी की खोज में झारखण्ड क्षेत्र से बाहर जाकर रहने लगे हैं दूसरे प्रदेशों में भी सरना धर्म मानने का जप करते हैं ।

इन झारखण्डी आदिवासी जातियों में मुख्यत: दो भाषा परिवार की जातियाँ हैं । एक तो द्रविड्यन यानि कुड़ुख(उराँव) भाषा-भाषी के लोग । दूसरी-आष्ट्रिसियन यानि मुण्डा, संथाल ही, खड़िया आदि भाषा-भाषी के लोग । इन सभी जातियों की भावनाओं, विचारों, कला-संस्कृतियों एव धार्मिक अनुष्ठानों में काफी सामंजस्य है । साथ ही "मुण्डा," "संथाल," एव "हो" जातियाँ सखुवा को सारजोम कहती हैं । इन सभी जातियों के रीति रिवाज कला संस्कृति इत्यादि में सारजोम अथवा सखुवा को अच्छा महत्व दिया जाता है ।

इतिहासकारों के अनुसार "उराँव" लोग दक्षिण भारत की ओर से आये और झारखण्ड क्षेत्र में अपना डेरा डाला। कहा जाता है इन लोगों का अपना राज्य कभी रोहतास गढ़ में था। उस समय झारखण्ड क्षेत्र में मुण्डा राजाओं का राज्य था। उराँव लोगों की पराजय तथा रोहतास छोड़कर झारखण्ड क्षेत्र में प्रवेश करना बताया जाता है। साथ ही मुण्डा लोगों द्वारा, उराँव लोगों को अपने समाज में बराबरी का दर्जा दिया जाना बताया जाता है। निश्चित रूप से उराँव लोगों द्वारा मुण्डाओं की कला संस्कृति, एवं धार्मिक अनुष्ठान एवं विश्वासों पर सम्मान प्रदर्शित करते हुए उन्हें अपनाया।

कहा जाता है मुण्डा जाति ने उराँव लोगों को तब शरण दी जब उराँव लोग मुण्डा लोगों द्वारा सरहुल के अवसर पर बलि चढ़ाये परसाद का सेवन किया। तत् पश्चात अपने समाज में बराबरी का दर्जा देकर अपना रैयत बनाया। धीरे–धीरे मुण्डा और उराँव अपने-अपने स्वभाव, प्रकृति एवं विचार धारा के अनुसार अलग-अलग जगहों पर रहने लगे। अभी भी बहुत से गावों में पहान और पुजार, मुण्डा ही है, भले ही वह गाँव उराँव बहुसख्यक है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि सरना शब्द का उद्भव आष्ट्रिक भाषा परिवार से हुआ होगा और सारजोम अथवा प्रकृति का पुजारी सरना अथवा सरना धर्मावलम्बी कहलाया जाने लगा होगा। अथवा यह हो सकता है कि इस क्षेत्र की सभी आदिवासी जातियों के विद्वान पुरखों द्वारा समाज के वर्त्तमान, भूत एवं भविष्य की गतिविधियों पर चिन्तन करके एक मूल रूप दिया होगा, एक सार रूप दिया होगा जिसका नाम "सरना" रखा गया होंगा। यदि ऐसा है तो नाना प्रकार की विविधताओं का कारण क्यों ? काफी तर्क-वितर्क के बाद यही पता चलता है कि हमारे पुरखों ने इन्हीं समस्याओं के समा-

धान हेतु वर्षों पहले पूरे आदिवासी समाज को एक जूट में रखने के लिए उनकी धार्मिक परम्परा, विश्वास, भावना, कला संस्कृति एवं रीति-रिवाजों का गहन चिन्तन-अध्ययन करके एक मूल रूप दिया, एक सार रूप दिया जिसका नाम "सरना" रखा गया होगा। तो फिर अपनी अज्ञानता के कारण हम आपस में लड़ें, यह तो ठीक बात नहीं है। आपसी लड़ाई से समाज में दरार पैदा होगी और हमारा सरना समाज कमजोर हो जायगा, टूट जायगा।

यदि अध्यात्म की ओर भी ध्यान दिया जाय फिर भी सारजोम (सखुवा) ही खरा उतरता है। हमारे पुरखों ने प्रकृति की गोद में विकसित उन तमाम चीजों को अध्यात्म से जोड़कर ही सारजोम (सखुवा) को सरना का प्रतीक माना होगा। जो सारजोम की विशेषता से स्पष्ट झलकता है कि निराकार ब्रह्म की उपासना के लिए सारजोम से बढ़कर दूसरा हो ही नहीं सकता। सारजोम का जड़ से लेकर तना तक, डाली-पत्ता, फल-फूल एवं तने का रस भी काफी महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी है। आदिवासी जीवन में सारजोम की सरसता के चलते ही किसी दूसरे पेड़ की छाया को न चुनकर सारजोम (सखुवा) को चुना गया होगा। इसकी सरसता इस प्रकार झलकती है :—

फूल-रंग-सफद :—सादगी एवं सच्चाई का प्रतीक। शायद इन्हीं फूलों से प्रभावित होकर आदिवासी, सादा एव सत्य-वादी जीवन जीते हैं।

फल- इसका उपयोग पेट की भूख मिटाने में किया जाता है साथ ही दवाई के रूप में भी उपयोग होता है।

पत्ता-रंग-हरा :—शांति, खुशहाली एवं प्रगति का प्रतीक। साथ ही इसका उपयोग पूजा-पाठ एवं भोज जैसे अवसरों पर शुद्ध समझा जाता है।

डालो-सबसे सुरक्षित, किटाणु रहित एवं औषधियुक्त, दतवन के रूप में इसका उपयोग किया जाता है। इसे दतवनों का राजा भी कहते है।

तना-इसका उपयोग लकड़ी एवं फरनीचर के रूप में मजबूत एवं शुभ माना जाता है।

जड़- इसकी जड़ का कोयला बहुत ही अच्छा होता है।

तने का रस-धूवन के रूप में हवन आदि कार्यों में उपयोग होता है।

पते का धुआँ-वातावरण शुद्ध करने वाला।

जमे हुए पत्ते के नीचे की मिट्टी-इसे टॉप सोयल (Top Soil) कहा जाता है। यह बहुत ही अधिक उपजाऊ होती है जिसका कोई जोड़ (मुकाबला) ही नहीं है।

साथ ही मनुष्यों की तमाम जरूरतों की चीजें सिर्फ सखुवा के जंगलों में ही मिलती हैं। दवाई-दारू से लेकर खाने-पीने तक की चीज। मनुष्य अपनी सारी जरूरतों की पूर्ति इन्हीं जगलों के बीच कर लेता था। अर्थात मानव जीवन जंगलों अथवा प्रकृति से माँ-बच्चे की भाँति जुड़ा हुआ है। शायद इन्हीं के चलते निराकार ब्रह्म की उपासना के लिए सारजोम (सखुवा) पेड़ की छाया को ही उत्तम समझा गया होगा।

प्रकृति की पूजा क्यों ?

जिस प्रकार ईश्वर (धर्मेस) सर्वशक्तिमान एवं रहस्यमय है उसी प्रकार प्रकृति भी सर्वशक्तिमान एवं रहस्यमय है। धर्मेस को देखा एवं जाना नहीं जा सकता है किन्तु प्रकृति को देखा एवं जाना जा सकता है। मनुष्य को जन्म से लेकर मृत्यु तक प्रकृति की गोद में पलना एवं समा जाना है। जब-जब प्रकृति के विरूद्ध कार्य हुआ है लोगों को तबाही ही हुई है। अतः प्रकृति रूपो

अथाह सागर की गहराई में पहुँच पाना मुश्किल हो जाता है, तो लोग इसे प्रकृति का नियम कहते हैं। इस प्रकार, प्रकृति जो सर्वशक्तिमान भी है और गुरु भी। तभी तो हमारे पुरखों ने प्रकृति की पूजा अथवा निराकार ब्रह्म की पूजा की शुरूआत की। बहुत से लोगों के मन में यह प्रश्न बार-बार उठता है कि हम आदिवासियों के न तो कोई धर्म ग्रन्थ हैं न ही धर्म गुरू, जिससे हम दिशा विहिन भटक रहे हैं। इस तरह की विचारधारा वाले लोग मानसिक रूप से काफी शोषित हैं। आत्मबल एव आत्म निरीक्षण नामक चीज है ही नहीं उनमें। वास्तविकता तो यह हैं हमारे गुरू अजर-अमर हैं। सच्चे अर्थों में प्रकृति ही हमारे गुरू हैं। पहाड़, नदो, झरना, सरना आदि हमारे गुरू हैं। हमारे ये गुरु, हर परिस्थिति में हमें शिक्षा दे रहे है हमें प्रेरणा दे रहे है। जिन्होंने इन अडिग गुरुओं को गुरु मानना छोड़ दिया, उनमें अडिगता खत्म हो गयी और वे पेन्डुलम (दोलन) की तरह झुल रहे हैं।

हलाँकि, कुछ मानसिक रुप से शोषित व्यक्यिों द्वारा यह कहा जाना कि-किसी गाँव में "सारेन पच्चों" नामक एक राक्षसी रहतो थी जो प्रतिदिन एक आदमी का आहार करती थी। अत्-तोगत्वा, एक दिन एक बुढ़िया के बेटे की बारी आयी तो बुढ़िया जोर-जोर से रोने लगी। बुढ़िया के रोने का कारण जानकर गाँव के युवकों ने उस राक्षसी (सारेन-पच्चो) को मारने का उपाय सोचा। तदुपरांत सभी युवकों ने मिलकर उस राक्षसी को मार गिराया। यह समाचार सुनकर गाँव के सभी बच्चे-बूढ़े, औरत-मर्द, खुशी से नाचने-गाने लगे। तथा धरती माँ की अरा-धना को गयो। उसी "सारेंन-पच्चो" से "सरना-पच्चो" नाम-करण की बात कही जाती है। किन्तु यह कहानी मनगढ़त एवं निराधार लगता है। "सरना माँ" सर्वशक्तिमान माँ है। इसे

सारेन पच्चो अथवा राक्षसो की बात कहना सर्वथा, भूल एवं अनुचित है। इन झूठी विचारधाराओं से स्वंय को बचाना चाहिए। इससे मनोबल गिर जाता है।

मनुष्य क्या, प्राणिमात्र प्रकृति की गोद में हैं। आग, पानी, हवा प्रकृति की मूल शक्तियाँ हैं। इसके बिना जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। समस्त सृष्टि परमात्मा (धर्मेस) और भक्ति का सृजन माना गया है। साथ ही परमात्मा की भक्ति ही प्रकृति है। वस्तुतः परमात्मा और प्रकृति एक ही है। हम सरहुल में १२ नये व्यंजन और नये फूल पत्तियाँ ग्रहण करते हैं। ९, १२ और १०८ के अक बहुत शुभ और शक्ति के प्रतीक माने गये हैं। मनुष्य, पशुपक्षी, पेड़-पौधों आदि का जीवन प्रकृति के इस वर्तुल (Circular) गति से प्रभावित होता है। चल-अचल सभी चीजें प्रकृति माता के ताल और लयबद्ध नृत्य में एक होते हैं। पृथ्वी नये फूल-फल और पत्तियों से लद जाती है। इसी अवसर पर सरहुल मनाया जाता है। प्रकृति के नये फूल-फलों को उत्सव उल्लास के साथ स्वीकार करना और इस कृपा के लिये प्रकृति माता की पूजा-भक्ति करना ही सरहुल पर्व का उद्देश्य है। मानव समाज में साल भर में फेर-बदल होता है। मनुष्य की भाषा संस्कृति, भौतिक एव सामाजिक जीवन वर्ष बाद परिवर्तित हो जाता है। विश्व में नये अविष्कार, नई विचारधारा का जन्म आदि, मानव समाज के लिये नये-नये फल-फूल के समान हैं। मानव जीवन के इस, उतार-चढ़ाव; बदलाहट को हम जोश पूर्वक प्रेम के साथ स्वीकार करें, अन्य समाजों के साथ हमारा कदम पिछड़ नहीं। इस ओर सकेत करना ही हमारे आदि पुरुषों का उद्देश्य इसमें छिपा है।

भादो एकादशो को हम 'करमा' मनाते हैं। यह पर्व ऐसे मौसम में मनाया जाता है जब सभी किसान अपनो-अपनी

खेती-बारी में फसलें लगा चुके होते हैं। प्राय: सभी खेती, नई खेती से अच्छादित होता है। करमा के एक दिन पहले गाँव के पहान-पुजार एवं गणमान्य व्यक्ति "कदलेटा सरना" की पूजा करते हैं। परिवार के अन्य पुरूष सदस्य प्रत्येक खेत में एक-एक भेलवा डाली अथवा तेला डाली अथवा सेंदवार डाली गाड़ता है। इसे "ईन्द" गाड़ना कहते हैं। यह "ईन्द" खेती की रक्षा हेतु एक खड़ा सिपाही की भाँति है। साथ ही वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी उत्तम है चूकि पक्षियों द्वारा फसल के कीड़े-मकोड़ों का सफाया करना तथा ये बीच फसल के बीच में इधर-उधर घूम-कर उस ईन्द डाली में बैटकर आराम करता है। परम्परा एवं विश्वास के अनुसार यह डाली इष्टकारो एवं अनिष्टहारी है। यानि हमने अपनो मेहनत मजदूरी से अपना जो कर्म है खेती बारी करने का, फसल लगाने का वह हमने किया किन्तु हमारी धसल अच्छो हो, पशुपक्षीएवं जनजीवन खुशहाल रहे, इसकी कामना के लिए "कदलेटा सरना" एव अन्य अनुष्ठानों में अपने आदि माता पिता एवं धर्मेस की पूजा भक्ति की जाती है। यह हमारे कर्म का पहलु है और करमा त्योहार का पहला चरण है।

साथ ही युवक-युवतियों द्वारा उपवास किया जाना एवं करमा डाली को गाँव के बीच अखाड़े में गाड़कर पूजा भक्ति की जाती है। इस पूजा के नेग–दस्तूर एवं गीत-गोविंद पर चिन्तन करने पर यह पता चलता है कि युवतियाँ करम-राजा (महादेव पार्वती) से एक अच्छे पति की (प्राप्ति) के लिए वर-दान माँगती हैं। एक सफल गृहिणी एव एक अच्छी माता बनने की कामना करती हैं। "सांसारिक जीवन में शादी-व्याह, पति-पत्नी एवं सृष्टि को आगे बढ़ाने की चेष्टा करना प्राणिमात्र का कर्म एवं धर्म है। यही सुख है, यही शांति है, यही जीवन है और

इसी खुशहाल जीवन की प्राप्ति हेतु धर्मेस एवं आदि माता-पिता की पूजा भक्ति हर्षोल्लास के साथ करना ही इस पर्व का उद्देश्य है। करमा में एक गीत गाया जाता है —

"करम डोड़ा नू पेलो कोय
बबु निग्हय चिखा लगी रे ।२।
हुसानुम तैइ गयो हुसानुम तम्बस
बबु निग्हय चिखा लगी ।२।"

यह गाना करमा की कहानी सुनने के तुरंत बाद गाया जाता है। इस गाना के अर्थ एवं गुदगुदाने वाला माहौल से, ऐसा लगता है कि सचमुच युवतियाँ एवं युवक अपने वैवाहिक जीवन को वहन करने के लिए हर्षोल्लास कर रहे हैं।

हालाँकि कुछ लोग इसे भाई-बहन का त्योहार मानते हैं, किन्तु यह अनुचित एवं असत्य लगता है। करमा के किसी भी नेग–दस्तुर एवं गोत–गोविंद में, भाई-बहन का त्योहार होने की झलक नहीं मिलती है।

करमा त्योहार के ठीक बाद शादी-ब्याह का कार्य शुरू होता है। वर पक्ष के लोग कन्या की खोज में निकलते हैं। इससे भी यह स्पष्ट होता है कि हम इस शुभ कार्य के लिए धर्मेस से ओहरा विनती कर चुके हैं, फिर किसी प्रकार का डर भय क्यों ? निश्चित ही जो लड़की पति की कामना की हो और उसके तुरन्त बाद उसकी माँगनी की बात हो तो उसके लिए उससे बड़ी खुशी क्या हो सकती है। अर्थात सांसारिक जीवन को हर्षोल्लास के साथ ग्रहण करना ही इस पर्व का उद्देश्य छिपा हुआ है।

आज का वज्ञानिक युग भी प्रकृतिवादी ही है और प्रकृति एवं मनुष्य के बीच सामजस्य बनाये रखने के लिए सतत् प्रयत्नशील है। विज्ञान जानता है कि प्रकृति और मनुष्य के बीच

सामंजस्य समाप्त होने पर किन-किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ सकता है। वैज्ञानिक सर्वेक्षणों से पता लगाया गया है कि पृथ्वी का तापक्रम दिनों-दिन बढ़ता जा रहा है। यदि यह बढ़ोत्तरी रूकी नहीं तो मनुष्य का जीना दुभर हो जायगा। यह बढ़ोत्तरी का कारण विश्व की औद्योगिकरण की होड़ है। औद्योगिकरण से नाना प्रकार के गैस, जैसे—कार्बन-डाइआक्सा-इड, मिथेन, क्लोरोफ्लुरोकार्बन इत्यादि की मात्रा में काफी बढ़ो-त्तरी हुई है। पेड़ पौधे (जो कार्बन डाईआक्साइड को उपयोग में लाकर हमारे लिये आक्सीजन छोड़ते हैं) के अंधाधुंध कटाई से इन गैसों की मात्रा बढ़ गयी है जिसके फलस्वरूप सूर्य का तापक्रम जो परावर्तित होता है इन गैसों द्वारा सोख लिया जाता है, जिससे वायुमंडल का तापक्रम बढ़ता ही जा रहा है। साथ ही क्लोरोफ्लुरो-कार्बन के चलते "ओजोन सतह" में कमी हो रही है जिससे सूर्य की रेडिया धर्मिता के प्रभाव का खतरा मंडरा रहा है। इस प्रकार यदि औद्योगिकरण की होड़ तथा वनों की अंधाधुंध कटाई पर रोक नहीं लगाया गया तो मनुष्य को प्रकृति से उत्पन्न गहन संकट झेलना पड़ेगा। सच यह है कि वर्त्तमान समय में मनुष्य की आयु सीमा घट रही है, स्वास्थ्य गिर रहा है, शारीरिक शक्तियाँ कम हो रही है, आध्यात्मिक शक्तियाँ छिन्न हो रही हैं।

विद्वानों के मतानुसार—पर्यावरण को बरकरार रखने के लिए ३३ %. जंगल की आवश्यकता हैं। किन्तु हमारे देश में लगभग २२ %. ही जंगल शेष रह गये हैं किन्तु यह २२ %. भी कागजी आँकड़ा है। वास्तव में करीब १० %. जंगल शेष होने की बात बतायी जाती है। क्या यह अपने देश तथा विश्व को हानि नहीं पहुँचा सकता ? देशवासिमों की प्रगति में बाधक नहीं बन सकता ? हानि पहुँचा सकता है, बाधक बन सकता है।

यह जानते हुए भी हम सभी कुछ भी नहीं कर पा रहे हैं, चूँकि आज का समाज ही कुछ बदल-सा गया है। व्यक्तिवाद, समूह-वाद पर हावी हो गया है, संचय प्रवृति जोरों पर है, बहुत सारी कमजोरियाँ घुस आयी हैं जिसे तोड़ फेंकना मुश्किल-सा हो गया है। हमारे विद्वान पुरखों को इन तमाम चीजों का पूर्वाभास रहा होगा तभी तो उन्होंने हमारे समाज एवं विश्वास को प्रकृति से अनुबंधित किया, समूहवाद की आधारशिला दी, साथ ही प्रकृति को सर्वशक्तिमान कहकर उसकी आराधना के लिए प्रेरणा दी। शायद इन्हीं कारणों से हमारे पूर्वजों ने प्रकृति की पूजा की शुरूआत की।

सरना समाज की सांस्कृति एवं सामाजिक व्यवस्था

सरना समाज की सांस्कृतिक एवं सामाजिक व्यवस्था, किसी विकसित समाज की सांस्कृतिक एवं सामाजिक व्यवस्था से तनिक भी कम नहीं है। किन्तु, वर्त्तमान भौतिकवादी समाज में आर्थिक एवं बौद्धिक विकास से उत्पन्न असमानता के कारण थोड़ा पिछड़ा जरूर है। आवश्यकता है इसे उपर उठाने की। इसके लिए हमारे समाज के आर्थिक एवं बौद्धिक रूप से विकसित लोगों को आगे आना होगा। "जो सभ्यता और संस्कृति आज पिछड़ी नजर आ रही हैं, इसी सभ्यता और संस्कृति को आर्थिक एवं बौद्धिक रूप से उन्नत लोग अपनाएँगे तो यह पिछड़ी हुई सभ्यता, संस्कृति स्वतः उपर उठ जायगी।" फिर तो, दूसरे विकसित लोग भी श्रद्धा एवं स्नेह भरी नजरों से देखेंगे। यह ठीक है कि समयानुसार कुछ परिवर्तन होना चाहिए किन्तु ऐसा नहीं कि जिससे अपनी पहचान ही मिट जाय।

हमारी संस्कृति एवं परम्परा कुछ ऐसी है जो हजारों वर्ष

पुरानी होतो हुई भी मिशाल बनी हुई है, जैसे–शादी–ब्याह में लड़का पक्ष से शुरूआत करना, शादी में लेन-देन को बढ़ावा न देना, महिलाओं को समाज में बराबरी का दर्जा दिया जाना इत्यादि, जिसके लिए दुनिया के तमाम विकसित देश एवं समाज संघर्षरत हैं अथवा सफलता भी मिली, तो चन्द दिनों पहले । इन तमाम चीजों का श्रेय हमारे विद्वान पूर्वजों को जाता है, जिनका अपूर्व दूरदर्शिता के कारण आज भी हमारी सामाजिक एवं सांस्कृतिक पहलुओं पर हलचलें पैदा नहीं हुई । इसीलिए तो एक अँग्रेज विद्वान ने कहा है—"This is one of the best culture in the world" एक अँग्रेज विद्वान ने जब इस तरह की बात कही तो अवश्य ही उन्होंने कुछ खाशियत देखी होगी। जो हमारी कमजोर नजरों एव शोषित विचार-धाराओं से परे है। जरूरत है उसे ढूँढ़ने की; उसकी ऊँचाई तक पहुँचकर अपनी सभभ्यता संस्कृति को सम्मान दिलाने की।

इतिहास साक्षी है–न हमने किसी की गुलामी सही है न ही जुल्म । अपने स्वत्व को रक्षा के लिए हम लड़े और खूब लड़े । भले ही हार का सामना करना पड़ा हो। तभी तो वेद, वेदांत, वेदांग में हमें अनार्य कहा गया है। तो क्यों आज हम अपना सामर्थ्य खोये हुए हैं। अपने पूवजों के खून को बदनाम कर रहे हैं। जरूरत है स्वयं को पहचानने को, स्वयं को जगाने को, अपने स्वत्व को बचाने की, अपने अधिकार को पाने की। इसके लिए हमें जगना होगा, स्वत्व को पहचानना होगा, समुचित बौद्धिक विकास करना होगा और एकजुट होकर संघर्ष करना होगा। सरना के सारत्व को जानकर, संघर्ष करके ही अपना अस्तित्व को बचाया जा सकता है।

क्या, सरना और हमारा अस्तित्व खतरे में है ?

हाँ, अवश्य खतरे में है ! हमारे जीवन में साल (सारजोम, सखुवा) सरना और हमारा (आदिवासी) अस्तित्व के बीच अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है । तीनों को अलग नहीं किया जा सकता । तीनों एक दूसरे के पूरक हैं । यदि हमारे पुरखों का लिखित इतिहास होता तो शायद इस अन्योन्याश्रयता का जिक्र जरूर मिलता। इतिहास के अनुसार, जिस प्रकार आर्यों ने हमारी सभ्यता–संस्कृति को नष्ट करके हमारी मूल संस्कृति को विनष्ट किया, उसी प्रकार आज भी वर्त्तमान विकसित समाज ने हमारी बची खुची सभ्यता और कला संस्कृति को तोड़ने के लिए कमर कस लिया है । तीनों में अन्योन्याश्रयता को इस प्रकार दर्शाया जा सकता है; —

साल (सारजोम)

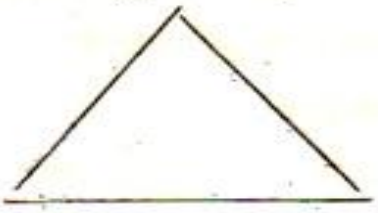

सरना हमारा अस्तित्व

तीनों में अन्योन्याश्रय संबंध

(क) साल :–यह साल (सारजोम) सिर्फ एक साल का पेड़ नहीं बल्कि पूरी प्रकृति एवं जगल-पर्वत का प्रतीक है । अतः साल अथवा जगल के कटने पर बेघर होकर खाना बदोश तो हम हो ही जाएँगे, फिर निर्मूल होने का ही इंतजार करना पड़ेगा । साल जो हमारा पोषक एवं रक्षक है, के

न रहने पर अस्तित्वहीन तो होना ही है।

(ख) सरना :-सरना वृक्ष सिर्फ एक वृक्ष न होकर हमारी भावनाओं, हमारे आध्यात्मिक विचारों, धार्मिक विश्वासों एवं सामाजिक मान्यताओं का प्रतीक है। यदि सरना वृक्ष को कोई जबरदस्ती नष्ट करता है तो वह हमारी भावनाओं, परम्पराओं, विश्वासों के प्रति अपमान है। और यदि हम इस अपमान को बर्दाशत करते हैं, तो इसे बढ़कर कायरता की बात हो ही नहीं सकती। जरूरत है इसपर गम्भीरता से विचार करने की न कि किसी पेड़ के कटने से चुप्पी साध लेने की।

(ग) हमारा अस्तित्व :-हमारा अस्तित्व इसी साल और सरना पर निहित है। यदि इसमें से किसी एक का भी अपमान होता है या फिर नष्ट किया जाता है तो हमारे अस्तित्व पर खतरा मंडरा रहा है। और यदि हमारा ही अस्तित्व नहीं रह जायगा तो साल और सरना की गरिमा को कौन समझेगा ? अतः साल और सरना की गरिमा को बनाये रखने के लिए अपने अस्तित्व को बरकरार रखना होगा।

इस प्रकार तीनों एक दूसरे से अलग नहीं हैं। जहाँ-जहाँ इसे अलग करने की कोशिश की गयी, वहाँ स्थिति ही बदल गई। या तो लोग दिशाविहिन हो गये या निर्मूल। या फिर भयंकर सूखा का सामना करना पड़ा अथवा आकाल। यह संकेत हमें बरबस चिन्तन के लिए ललकार रहा है, फिर भी हम चुप हैं। प्रत्यक्ष रूप में क्या और कैसे हो रहा है यह बतलाने की जरूरत नहीं पड़ेगी। जरूरत हमें इस बात की है कि हम इतिहास से सीखें और वर्तमान में गलती न करके भविष्य का मार्ग सीधा करें।

हमारा अस्तित्व किस प्रकार मिट रहा है

विकसित समाज अथवा वर्ग, जिसे शोषक अथवा शासक वर्ग भी कहा जा सकता है, लोगों द्वारा अपनी तीव्र कुशाग्रता एवं दूरदर्शिता से हमारी कमजोरियों को, हमारी भावनाओं को अच्छी तरह पहचानकर, अपनी पूर्व रचित सूक्ष्म चाल की जाल में हमें फँसा दिया जाता है। जिसका आभास हमें तब होता है जब हमारा सब कुछ लुट चुका होता है। जंगल हमारे माता-पिता समान हैं और इन्हीं में से एक सरना भी है। फिर तो, जंगल के कटने से हम निराश्रय हो ही जाएँगे। हमारा घर उजड़ा, हमारी भावनाओं के साथ खेलवाड़ हुआ तो हमारा अस्तित्व ही कहाँ रहा ? जिस प्रकार वन की अंधाधुँध कटाई से हम बेघर इधर-उधर भटक रहे हैं, असम, भूटान, बंगाल आदि की चक्कर लगा रहे हैं। ठीक उसी प्रकार साल (सारजोम) अथवा सरना के न रहने पर हम अस्तित्व विहीन हो ही जाएँगे। फिर या तो हम हिन्दू, ईसाई, मुस्लिम या फिर सिख इत्यादि में परिवर्तित होकर दिशा विहिन भटकते फिरेंगे।

विज्ञान की नजर से देखने पर भी कुछ तथ्य सामने आता है जो चिन्तन के लिए मजबूर करता है। आजतक साल वृक्ष का Plantation वैज्ञानिक तरीके से नहीं हो पाया है। जिस प्रकार आम, लीची, अमरूद आदि पौधों को Cross plantation के जरिये उन्नत किस्म का पौधा तैयार किया जाता है उसी प्रकार Cross plantation करके साल पौधा का उन्नत पौधा तैयार करने में विज्ञान भी असमर्थ है। वैसे खोज जारी है। साल वृक्ष के Plantation का एक मात्र तरीका उसका बीज है और बीज से पौधा तैयार करना भी वन विभाग एवं

विज्ञान के लिए चुनौती का विषय है। इस प्रकार साल और सरना समाज की अन्योन्याश्रयता हमें यह सोचने के लिए बाध्य करती है कि कहीं साल के समाप्ति के साथ-साथ हमारी भी समाप्ति न हो जाय। हो सकता है हमारा शरीर जिन्दा रहे किन्तु यदि हमारी आत्मा, हमारा स्वभिमान मर जाय तो इसे निर्मूलता ही कहा जा सकता है।

पुर्तगालियों ने मारिशस पर कब्जा किया। वहाँ शासन किया। साथ ही साथ एक "डोडो" नामक पक्षी को मारकर समाप्त कर दिया। परिणाम स्वरूप, उस पक्षी पर आश्रित, Calveria Major नामक फलदार वृक्ष ही समाप्ति पर है। वैज्ञानिक उस पक्षी को जिन्दा तो नहीं कर सके, किन्तु Calveria Major नामक वृक्ष को पूर्ण समाप्ति से बचा लिया। दरअसल उस वृक्ष के फल इतने कठोर होते हैं कि उसे Plantation लायक बीज तैयार करना मुश्किल होता है। उस फल को सिर्फ 'डोडो' पक्षी ही पचा सकता था जिस बीज से नये पौध का अंकूरण होता था। अर्थात् एक पक्षी को पूर्ण समाप्ति से उस पर आश्रित एक पेड़ की जाति समाप्ति पर है। कहीं इस तरह का सम्बन्ध तो नहीं है साल और सरना समाज में। दरअसल, जिस प्रकार साल अबतक विशुद्ध है उसी प्रकार सरना-समाज भी विशुद्ध वातावरण में ही विकसित कर सकता है। और विकसित भारतीय समाज के साथ कदम से कदम मिलाकर चल सकता है। यदि इसे मिश्रित किया गया तो यह समाज उठने के बजाय डूबता ही जायगा।

पूर्व रचित चाल के अन्तर्गत जंगलों की अवैध कटाई, सिंचाई के नाम पर अनुपयोग बाँध, कारखाने के नाम पर वृहत विस्थापन आदि; क्या हमारे अस्तित्व के खतरे की सूचित नहीं करता? जलाशय के नाम पर कितने सरना स्थल उजड़े, सरना वृक्ष कटे,

अखाड़ा उजड़ा, गाँव उजड़े, बहुबेटियों का सुहाग उजड़ा, बेघर हुई । क्या, ये हमारे अस्तित्व के खतरे को नहीं दर्शाता ? दर्शाता है, और डके की चोट पर दर्शाता है, किन्तु हमें पता तब चलता है जब सबकुछ लुट चुका होता है । सामूहिक विस्थापन से हमारे लोगों को खानाबदोश की जिंदगी जीनी पड़ रही है । हमारे छोटानागपुर के लोग असम में बंधुवा मजदूर की भाँति जी रहे है । वहाँ राज्य सरकार द्वारा आदिवासी होने का भी मान्यता नहीं दी गयीहै । अर्थात खानाबदोश जिंदगी के चलते, नागरिकता तक का प्रश्न उठ खड़ा हुआ है । तो फिर हमारी स्थिति सुदृढ़ होने के बजाय बिगड़ती ही जा रही है । सामूहिक विस्थापन के चलते भाषा, कला-संस्कृति आदि भी नष्ट होती जा रही है; जो हमारे पहचान एव अस्तित्व को घटी बजाकर बता रहा है ।

इस सम्बन्ध में हमारे बुजुर्गों का कहना है कि हमारे इस छोटानागपुर क्षेत्र में शोषक एव शासक तत्वों ने देखा कि यहाँ की आदिवासी जातियों में उराँव जाति कुछ अधिक बुद्धिमान और चालाक है । यदि इनके समूह को नष्ट कर दिया जाय तो इनकी शक्तियाँ कमजोर हो जाएँगी और फिर ये आवाज उठाने लायक नहीं रह जाएँगे शायद इसीलिए अधिकाधिक जलाशय योजनाएँ उराँव बहुल क्षेत्र में बनती देखी जा रही हैं । कहीं यह सुसंगठित चाल तो नहीं है । अतः भविष्य में आनेवाले खतरे से बचने के लिए हमें एक जूट होना पड़ेगा । सरना के सारत्व को समझना पड़ेगा । अपने अस्तित्व और अधिकार की रक्षा के लिए सरना ही एकमात्र सार है ।

धर्म एवं जातीय अस्तित्व को खतरा

इतिहास साक्षी है, भारतीय इतिहास में विदेशी आक्रमण-

कारियों ने यहाँ की मूल जातियों को न सिर्फ आर्थिक रूप से शोषण किया बल्कि यहाँ की कला संस्कृति एवं धर्म को भी विनष्ट किया। ईसा पूर्व आर्यों ने यहाँ की मूल जातियों को सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक शोषण किया। आर्यों ने यहाँ की मूल जातियों को युद्ध में हराकर अपना गुलाम बनाया, फिर उनपर अपने सिद्धांतों का बोझ लादा। प्राय: वे मूल जातियाँ जिन्होंने आर्यों के समय हिन्दू धर्म को मान लिया उसे समाज का सबसे निचला गुलाम वर्ग या शुद्र कहा गया। इसी प्रकार मुगलों ने भी अपनी ताकत के बल पर कमजोर लोगों को "इस्लाम धर्म" स्वीकार करने के लिए मजबूर किया। अँग्रेजों के आने के साथ-साथ ईसाई मिशनरियाँ भी भारत आयी। उन्होंने यहाँ के आदिवासियों के धार्मिक विश्वास एव परम्परा को तिरस्कार किया एवं उन्हें विधर्मी बताया। अज्ञानवश अपनी कमजोरियों के कारण लोगों ने धर्म परिवर्तन किया। इस धर्म परिवर्तन में यहाँ के ब्रह्मणों, जमींदारों महाजनों एव साहुकारों का भी बहुत बड़ा हाथ रहा है जिन्होंने आदिवासियों को वर्षों तक खून चूसा। जिससे ईसाई मिशनरियों द्वारा दो वक्त की रोटी, थोड़ी सी सहानुभूति पाकर लोगों ने धर्म परिवर्त किया। अभी भी मध्यप्रदेश के उराँव बहुल क्षेत्र जशपुर, जो रायगढ़ जिला के अन्तर्गत है, के लोगों की माली हालत वैसी ही है। जशपुर राजा ने यहाँ के आदिवासियों का खूब शोषण किया। आर्थिक, मानसिक एव बौद्धिक विकास करने का मौका ही नहीं दिया। अकाल एवं भूखमरी में महुवा एवं नौर (सखुवा का फल) तक को जमा करने की अनुमति नहीं थी ताकि भूखे पेड़ राजा की गुलामी बर्दाशत करते रहें। उराँव लोग गीत भी गाते है—

"जशपुरिया बेलस आयो नौरन पेसा मला चि-दस,
मदगी पेसा मला चि-दस। राजी नू कूल-कीड़ा, अकाल-बिपत,
नौरन पेसा मला चि-दस मदगी खोजा मला चि-दस।"

कहने को जरूरत नहीं कि जशपुरिया राजा आदिवासियों पर क्या-क्या जुल्म नहीं ढ़ाहे। वहाँ के उराँव लोगों को हिन्दू कहलाने के लिए वाध्य किया गया। साथ ही उन्हें अब शुद्र भी कहा जान लगा। यही करण है कि जशपुर क्षेत्र में लोग गाँव के गाँव ईसाई धर्म स्वीकार किये।

मिशनरियों के द्वारा के आदिवासियों के बौद्धिक विकास के लिए किया गया कार्य काफी सराहनीय है। किन्तु यहाँ के आदि धर्म को अनादर एव तिरस्कार करके मिशनरियों ने मानसिक एवं धार्मिक शोषण जरूर किया है। मिशनरियों द्वारा यहाँ की परम्परा एवं विश्वास को एक अलग रूप दिये जाने का उदाहरण इस प्रकार है। आज से करीब १५० वर्ष पूर्व सभी उराँव अपने नाम के वाद उपनाम में "उराँव" लिखा करते थे। मिशनरियों ने हरेक ईसाई आदिवासो को एक अँग्रेजी नाम दिया अथवा यों कहें कि उस ईसाई आदिवासो को समाज में एक अलग पहचान दिलाया। प्रायः यह मुख्य नाम पाश्चात्य संस्कृति से संबंधित था; किन्तु उन विदेशो पादरियों अथवा धार्मिक नेताओं ने एक धूर्तता जरूर की। वह यह कि उपनाम में आदिवासी संस्कृति को एक मुहर लगा दी। उपनाम में उस व्यक्ति का गोत्र हो लिखा जाने लगा साथ ही यह तर्क दिया गया कि गोत्र लिखन से एक दूसरे को पहचानने में आसानी होगी, और गोत्र को भूलने का डर नहीं रह जायगा। दरअसल, यहाँ पर उन विदेशो पादरियों को दोहरी नीति को झलक मिलतो है। एक तो पाश्चात्य नाम देकर अपनी बात मनवाना। दूसरो- आदिवासी नाम देकर अपने से अलग किये रखना। यानि यहाँ के मूल लोगों से भी दूर तथा पाश्चात्य संस्कृति से भी पीछे। दोनों के बीच झूलने के लिए छोड़ दिया। किन्तु इस मानसि- कता का असर यहाँ के अपरिवर्तित आदिवासियों अथवा सरना समाज के लोगों पर पड़ा। इस झारखण्ड क्षेत्र में मिशनरियों

का अच्छा-अच्छा स्कूल एवं कालेज है। वहाँ नामांकन हेतु सरना छात्र-छात्राओं को उपनाम में गोत्र ही लिखना पड़ता है अन्यथा उनकी दाखिला नहीं ली जाती है। राँची के श्री जे० उराँव अपनी सुपुत्री का नामांकन हेतु संत अन्ना बालिका विद्यालय राँची में आवेदन पत्र दिया। सभी आवश्यक शर्तें पूरी करने के बावजूद उनकी सुपुत्री का नामांकन इसलिए नहीं हुआ चूँकि श्री उराँव अपनी पुत्री का उपनाम कच्छप नहीं लिखवाकर सुश्री उराँव लिखवाना चाह रहे थे। तब स्कूल के प्राचार्या ने यह स्पष्ट किया कि यदि आप कच्छप नहीं लिखवाते हैं तो आपकी सुपुत्री का नामांकन नहीं लिया जायेगा। इसके बाद श्री उराँव भी अपने स्वाभिमान पर डटे रहे और अपनी सुपुत्री का नामांकन किसी दूसरे विद्यालय में करवाया। दूसरी बात यह है कि आदिवासी ईसाई शिक्षा के क्षेत्र में आगे बढ़े हुए हैं। अतः सरकारी गैरसरकारी आदि सभी संस्थानों में उनका अच्छा खासा बोलबाला है उसके बीच में किसी उराँव, मुण्डा, खडिया आदि उपनाम वालों अथवा गैर ईसाइयों को नीची नजरों से देखा जाता है अतः इस मानसिक शोषण से बचने के लिए गैर ईसाई आदिवासी अपना गोत्र ही लिखते हैं जो गैर ईसाइयों की एक बहुत बड़ी कमजोरी है।

यदि ईसाई मिशनरियाँ सरना लोगों के मानसिक एवं बौद्धिक विकास के लिए गोत्र लिखवाती है, परन्तु क्या, गोत्र लिखने से उनका मनोबल बढ़ जायगा। और फिर सिर्फ अपरिवर्तित आदिवासियों को ही गोत्र लिखने के लिए बाध्य क्यों किया जाता है ? दूसरे समुदाय के लोगों से तो गोत्र और धर्म नहीं पूछे जाते ! वास्तविकता यह है कि ईसाई मिशनरियाँ जानती हैं कि सरना समाज के लोगों को ही मिथ्या प्रचार एवं गलत तर्क, तथा प्रलोभन देकर फुसलाया जा सकता है चूँकि सरना समाज के लोग बिना पेंदी का लोटा की तरह ढुलमुला रहे हैं। सफलता

भी मिली है मिशनरियों को। इस प्रकार स्कूलों में गोत्र लिखने को बाध्य करना धर्म परिवर्तन कराने का पहला चरण हैं। और तो और जो सरना छात्र-छात्राएँ मिशन स्कूलों में पढ़ते हों तथा छात्रावास में रहते हों उन्हे सुबह-शाम गिरजा जाना पड़ता है जब कि वे छात्र-छात्राएँ इसके लिए तैयार नहीं रहते हैं। उन्हें डर इस बात का हमेशा रहता है कि गिरजा नहीं जाने पर स्कूल से निकाल दिया जायगा। यही डर मन फिराव का कारण बन जाता है। भारतीय संविधान, अनुच्छेद २५ से २८ में भारत को धर्म-निरपेक्ष राज्य बताया गया हैं। उसमें कहा गया है कि "हर नागरिक को यह स्वतंत्रता है कि वह विवेक से काम ले और स्वतंत्र रूप से कोई भी धर्म अपनाए।" किन्तु यहाँ विवेक को स्थान ही नहीं दिया जाता है। येन-केन-प्रकारेण यदि किसी को दूसरा रास्ता दिखया जा रहा हो तो निश्चित रूप से कोई भी भटक सकता है जो कि असवैधानिक है। इस असंवैधानिक शोषण को लोग अबतक समझ नहीं पाये हैं और जोसमझे हैं उन्हें यह डर है, कहीं उनकी औलाद मिशन स्कूल की शिक्षा से बंचित न हो जाय। संविधान के अनुच्छेद-२९ और ३० में शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक अधिकार प्रदान किया गया है। इस अनुच्छेद के अनुसार—"अल्पसंख्यक अपनी इच्छानुसार शिक्षण संस्थान खोल सकते हैं। अल्पसंख्यकों को यह अधिकार, विशेष सुविधा के रूप में दिया गया। अल्पसंख्यों को यह अधिकार दिया गया है कि वे अपने कार्यकारी और नियंत्रक पार्षदों का चुनाव आपस में करें। राज्य सरकार इनके कार्य कलापों में कोई हस्त-क्षेप नहीं करेगी। किन्तु इसी अनुच्छेद में यह भी कहा गया है कि—"शैक्षणिक संस्थान जाति, धर्म, मूल या भाषा के आधार पर किसी भी भारतीय का नामांकन से इनकार नहीं कर सकती है।" इन परिस्थितियों में गोत्र को नाम के बाद न लिखे जाने

पर नामांकन न लिया जाना संविधान का हनन भी है और धर्म-निरपेक्ष कानून का उल्लंघन भी ।

गोत्र को न भूलने का तर्क दिये जाने के सम्बन्ध में सरना लोगों का विश्वास यह है कि गोत्र भूलने की चीज है ही नहीं। जन्म से लेकर मृत्यु तक प्रत्येक धार्मिक एवं सामाजिक अनुष्ठानों में गोत्र का नाम लिया जाता है अथवा पूछा जाता है। हमारी संस्कृति, परम्परा, विश्वास, पर्व त्योहार आदि सभी अनुष्ठानों में गोत्र का नाम लिया जाता है। अतः भूलने का प्रश्न ही नहीं है। भारतीय संस्कृति में, सभी जातियों के लोग अपने गोत्र को गौण रखते है । वे सभी जातियाँ जो अपने उपनाम में गोत्र को नहीं लिखती, आजतक किसी ने भी अपना गोत्र नहीं भूलाया। दरअसल ईसाई अपनी मूल संस्कृति छोड़ चुके हैं । अतः गोत्र की महत्ता एवं उपयोगिता को भी भूल चुके हैं। गोत्र, नहीं भूलने का तर्क हथकंडा मात्र है। दूसरी बात यह है सरना धर्मावलबी "गोत्र" को पूजनीय मानते हैं। गोत्र को उपनाम बनाकर बदनाम और बजारू नहीं बनाना चाहते ।

साथ ही ईसाई धर्म प्रचारकों ने मिथ्या प्रचार एवं गलत तर्क देकर सरना लोगों को बरगलाया, मानसिक शोषण किया। समाज में लोगों के बीच दरार पैदा कराया और अपनी बातें मनवाने के लिए बाध्य किया। सरना लोगों को इस बात का गर्व है कि वे धार्मिक आस्था में स्वतंत्र एवं निर्भीक हैं । उनपर किसी प्रकार का सैद्धांतिक बोझ नहीं है और मानव धर्म पर आधारित सरना धर्म के अनुयायी है ।

ठीक इसी प्रकार, इन हिन्दू संगठनों द्वारा गलत एवं झूठा तर्क देकर सरना लोगों को "हिन्दू' कहा जा रहा है, जो आने वाले दिनों में सरना लोगों के लिए खतरा साबित हो सकता है। सही बात तो यहहै कि सरना लोग "हिन्दू" हैं ही नहीं। उन्हें

बार-बार हिन्दू कहकर आदिवासी धर्म और भावना से दूर किया जा रहा है। हिन्दू संगठन अपनी बिगड़ती हुई परिस्थिति में आदिवासियों को हिन्दू कहकर एक गुलाम वर्ग तैयार करना चाहता है। हिन्दू संगठन चूँकि ब्राह्मण वादी है और ब्राह्मणधर्म के अनुसार उनकी सेवा हेतु एक गुलाम वर्ग चाहिए ही। सरना लोगों पर "हिन्दुवाद" का बोझ लादकर, उनकी परम्पराओं, विचारों एवं भावनाओं को दबा दिया जायगा। यदि हिन्दू संगठन सरना लोगों का विकास चाहता है तो उनका मनोबल बढ़ाने के लिए हिन्दू कहने की क्या जरूरत है ? सरना के नाम पर ही उनका मानसिक विकास क्यों नहीं किया जाता ? उनका मनोबल बढ़ाने के लिए उनके आदर्शों, परम्पराओं, विश्वासों आदि को बढ़ावा, क्यों नहीं दिया जाता ? क्या, उनके आदर्श, कला संस्कृति, नैतिकता आदि इतनी पिछड़ी हुई हैं जो आधुनिक भारतीय समाज की मुख्य धारा के साथ जोड़ने लायक नहीं है ? ऐसी बात नहीं है। दरअसल आदिवासी धर्म-संस्कृति, आदर्श एवं नैतिकता इतना धनी है कि यदि इसका समुचित विकास हो जाय तो यह सबसे आगे बढ़ जायगा। शायद इसका आभास सम्भले हुए लोगों को है और इसी डर से वे आदिवासियों का मनोबल ऊँचा कराने का प्रयास न करके दमनकारी नीति अपनायी है। हाँ, यदि हिन्दू संगठनों की लड़ाई ईसाई मिशनरियों से है तो "सरना" लोगों को बीच में घसीटने की क्या जरूरत है।

सरना लोग हिन्दू किस प्रकार नहीं हैं वह इन तथ्यों से स्पष्ट होता हैं – (१) सरना समाज में ब्राह्मणों का स्थान कुछ भी नहीं हैं, जबकि हिन्दुओं के हरेक पूजा-पाठ एवं पर्व-त्योहार में ब्राह्मण, पुजारी होता है। (२) सरना धर्मावलम्बी मुर्दे को दफनाते है किन्तु हिन्दू सिर्फ जलाते हैं। (३) सरना संस्कृति, परम्परा, विश्वास एवं जन्म से लेकर मृत्यु तक के संस्कार रीति

रिवाज आदि सभी हिन्दू रीति से अलग है। इस प्रकार सरना धर्मावलम्बी हिन्दू नहीं है। इतिहास में इन्हें अनार्य कहा गया है तथा उन्हें खूब सताया गया है।

वास्तविकता तो यह है कि विकसित जातियों द्वारा सामाजिक एवं आर्थिक रूप से पिछड़ी जातियों को निम्न जाति अथवा छोटी जाति कही जाती है। कमजोर जातियों की भाषाओं और साहित्य को महत्वहीन बताकर रखा जाता है, क्योंकि भाषा और साहित्य का विकास जातीय स्वाभिमान एवं राजनैतिक चेतना लाता है। कमजोर जातियों के अन्दर उनकी भाषा और संस्कृति के प्रति हीनता की भावना पैदा कर दी जाती है जिसके फलस्वरूप वे धीरे-धीरे अपनी संस्कृति और भाषा को छोड़कर शोषण करने वाली, आगे बढ़ी हुई जातियों की भाषाओं को अपनाती है, धीरे-धीरे ये कमजोर जातियाँ व्यक्तित्वहीन बन जाती है और एक दिन ऐसा आता है जब जातियाँ अपनी पहचान, संस्कृति भाषा और धर्म आदि सब छोड़कर आगे बढ़ी हुई जातियों के समाज में मिल जाती है और उनके समाज का सबसे निचला वर्ग या गुलाम वर्ग बनकर अपना अस्तित्व ही खो देता है। इसे ही कहते हैं जातीय शोषण। अतः समय रहते चिन्तन करके इन समस्याओं का समाधान ढूँढ़ना ही पड़ेगा।

हमारी विभूति एवं उपसंहार

ऐ सरना पुत्रों! आत्म निरिक्षण करों। अशिक्षा, आर्थिक दुर्बलता समस्त बुराइयों की जड़ है। समुचित शिक्षा से मनुष्य का मनोबल ऊंचा होता है, आत्मबल और स्वाभिमान बढ़ता है। शुद्ध आचरण से मनुष्य दृढ़ निश्चयी बनता है। कार्तिक बाबू, लालबहादुर शास्त्री, महात्मा गाँधी आदि व्यक्ति, विद्या और आचरण के बल पर ही निडर निर्भीक एवं स्पष्टवादी थे। उन्हे डिगाना असंभव था। अपनी सादगी एवं उच्च विचार के लिए हमेशा पूज्य रहेंगे। खेत खलिहान हमारी मूल सम्पत्ति है। आज बड़े-बड़े लखपतियों के पास भी अपना मकान कहने के लिए नहीं है। बड़े नगरों में लाखों का कारबार चलता है फिर भी लोग भाड़े की आधारशिला पर अवलंबित है। दुकान, फर्म सब किराये पर ही लेकर अनेक पूँजिपतियों का निर्वाह हो रहा है। हमारी अपनी भाषा है, संस्कृति है, अपना गीत है, अपना बाजा

और नृत्य है । इस मामले में हम काफी सम्पन्न है । हम अनूठे और अद्वितीय हैं । आज भी हम किसी से पीछे नहीं है । किसी भी क्षेत्र में, भले ही हमारी प्रतिभा को दबाया जाता है या फिर कुचल दिया जाता है । आदिवासियों को Army में Marsal Race में रखा गया है । Marsal Race यानि लड़ाकू जातियों का समुदाय किन्तु इसके बावजूद भी अबतक आदिवासी रेजिमेंट नामक कोई चीज नहीं है जबकि सभी Marsal Race के अन्तर्गत समुदाय का एक अलग रेजिमेंट है (जैसे सिक्ख रेजिमेंट, गोरखा रेजिमेंट, राजपूत रेजिमेंट आदि) इस प्रकार हम डरपोक कहाँ है हम अभी भी बहादुर हैं । हमारे पूर्वज भी बहादुर थे और हम भी बहादुर हैं । जरूरत है सिर्फ अपने अन्दर की शक्ति को उभारने की, प्रयोग में लाने की । शिक्षा के क्षेत्र में भी हम पीछे नहीं है । हमारे अन्दर क्षमता है । मिशाल के तौर पर हमारे कार्तिक बाबू को लीजिए । वे किसी बड़े घर अथवा बड़े जाति-धर्म के नहीं, बल्कि हमारे ही बीच के व्यक्ति थे । अभाव एवं आर्थिक विपन्नता के बावजूद उन्होंने अपने अन्दर के सामर्थ्य को उभारा । हम सबों में सामर्थ्य है । जरूरत है सही समय पर, सही जगहों पर अपने सामर्थ्य को उभारना । अन्य विभागों में भी, जैसे- अथलीट, खेल-कूद आदि क्षेत्र में आदिवासी कहे जाने वाले Negro नशल के लोगों का अच्छा प्रभुत्व है । इसे भी हमें सीख लेनी चाहिए । भारतीय खेल-कूद एवं अथलेट को भी हमारे आदिवासियों ने अच्छा सम्मान दिलाया है । फिर हम कमजोर कहाँ है । हम सम्पन्न हैं पर हम सार्मथता खोये बैठे हैं । जरूरत है इसे उजागर करने की ।

आज हम अपनी मौलिकता को नहीं पहचानने के कारण नाना प्रकार के गुटों में विभक्त है- टाना, कबीरपंथी, बकरा भगत पुराना भगत आदि । उपविचार धाराओं ने हमें आपस में बाँट दिया । हम ईसाई धर्म अपनाने में अपनी सुरक्षा और सम्मान समझने की भूल कर रहे हैं । आज संसार बहुत धनी है । परन्तु धन के होते हुए भी संसार का कोई समाज सुखी नहीं है । देश-देश में लड़ाई है । समाज-समाज में टकराव है । इसका मूल कारण आध्यात्मिक अनुपलब्धि है । सच तो यह है जो स्वतन्त्र और तट-

स्थ है वही सुखी है। और स्वतंत्र वही रह सकता है जो जागरूक हो। "सतत् जागरूकता ही स्वतंत्रता का मूल्य है।" चोर तभी घर में चोरी करता है जब ताला खुला हो और मालिक सोया हो। अगर हम ही सोये हों तो हमारा समाज, धर्म; संस्कृति, आचरण, वन, जमीन, इज्जत आदि का लुटा जाना स्वाभाविक ही है। लुटेरा तो आखिर लुटेरा ही है। उससे और क्या उम्मीद की जा सकती है। जरूरत है हमें शक्ति सम्पन्न होने की, अपना Original form (मूल रूप) को समाज के सामने सही ढ़ंग से पेश करने की। हमारी अच्छाइयों को लेख समाचार के माध्यम से दुनिया को अवगत कराने की। आज समाज को पूर्ण निष्ठावान, ज्ञानवान, कर्त्तव्य परायण और दृढ़ निश्चयी नागरिकों की आवश्यकता है। हम बुद्धिजीवियों को विशेष रूप से इस पर विचार करना होगा। और अपना कर्त्तव्य का पाठ अदा करना होगा।

सरना पुत्रो ! सरना की सोयी हुई जातियों ! उठो, करवट लो और हरकत करो। तुम अमृत की संतान हो। मनुष्य बनकर जीयो। मनुष्य के रूप में पैदा हुए हो मनुष्य की इज्जत और गौरव के साथ जियो। अपने महान पुरखों, इतिहास और संस्कृति की ओर देखो। बिरसा को देखो, सिद्धू कान्हू की ओर देखो, तिलका मांझी की ओर देखो, बुद्धू बीर की ओर देखो, सिमगी दई, चम्पु दई, कैली दई की ओर देखो, कार्तिक उराँव की ओर देखो। वे हमें मनुष्य बनाने आये थे। बहादुर और नेक जाति की इज्जत दिलाने आये थे। लेकिन आज हम जातीय शोषण एवं अपमान के कीचड़ में पड़े हुए हैं। उठो, तोड़कर फेंक दो उन जंजीरों को जिसने हमारी जाति को, हमारे धर्म को, हमारी भाषा और संस्कृति को, हमारी उन्नति के साधनों को कैद कर रखा है। उठो अपने अधिकारों के लिए लड़ो। अपनी जाति के सम्मान के लिए लड़ो। अपनी आजादी के लिए लड़ो। अपनी पहचान और अस्तित्व के लिए लड़ो। उठो और लड़ो। आगे बढ़ो।

"जय सरना माँ" "जय भारत"

प्रकाशक :
अद्दी अखड़ा प्रकाशन
तोलोंग चम्मबी, चिरौन्दी, नगड़ा डिप्पा, बोड़ेया रोड, राँची (झारखण्ड)- 834006